International Journal of Enhanced Research in Educational Development (IJERED)
ISSN: 2320-8708, Vol. 10 Issue 4, July-August, 2022, Impact Factor: 7.326

अमरकान्त जी के उपन्यासों में नैतिक मूल्यों के परिवर्तित मानदण्ड

डॉ. वंदना रानी

सहायक प्रोफैसर, नैशनल कॉलेज ऑफ एजूकेशन, सिरसा

शोध आलेख सार

समाज के प्रति जागरूक रहने वाला लेखक सामाजिक यथार्थ को विविध आयामों के माध्यम से अभिव्यक्त करता रहता है। अपनी अनुभूति व प्रमाणिकता के बल पर अमरकांत जी ने अपने उपन्यासों में विविध मूल्यों को चित्रित किया है। जैसे ग्रामीण जीवन मूल्यों का बदलता स्वरूप, विस्थापन की विडम्बना और महानगर का यथार्थ आदि। नैतिकता मनुष्य समाज की मुख्य विशेषता है। यह बात अलग है कि प्रत्येक समाज के नैतिक मानदण्ड अलग–अलग हो सकते हैं किन्तु नैतिकता सभी में पायी जाती है। किसी भी उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए व्यक्ति को कोई न कोई साधन अपनाना पड़ता है, कौनसा साधन उसके लक्ष्य के लिए उचित है, कौन अनुचित है उसका यह ध्यान रखता है। उचित अनुचित का यह विवेक ही नैतिक है। नैतिकता वह नियम व आदर्श है जिसमें मनुष्य को व्यवहार एवं आचरण को नियंत्रित एवं संयमित कर समाज व्यवस्था में सुदृढ़ता आती है। समाज में व्यक्ति के अच्छे–बुरे गुणों व आचरणों को नैतिक मानदण्ड द्वारा मूल्यांकित किया जाता है। किन्तु परम्पराओं के विरोध एवं मूल्यों के विघटन से समाज में नैतिकता की नई स्थितियों ने जन्म लिया है।

मूल शब्द : अमरकान्त , नैतिक मूल्य , परिवर्तित मानदण्ड

अमरकान्त जी समाज में घटित होने वाली छोटी–छोटी या बड़ी किसी भी घटना से पूर्णतया सरोकार रखने वाले साहित्यकार हैं। समाज में व्याप्त स्थितियाँ जो समाज का ताना–बाना बुनती है जिनमें नैतिक मूल्य, नारी, जातीयता का द्वन्द्व, सामाजिक प्रतिष्ठा, विस्थापन की विडम्बना, प्रेम सम्बन्ध, अनमेल विवाह आदि विविध प्रवृत्तियाँ सामाजिक जीवन को उजागर करती हैं। अमरकान्त जी के अधिकतर पात्र द्वन्द्वात्मक व तनाव की स्थिति में जीते हैं। जो मोह, नैतिकता में अन्दर से टूटे हुए होते हैं। उन्होंने 'सुन्नर पांडे की पतोह', 'ग्रामसेविका', 'इन्हीं हथियारों से' आदि उपन्यासों में नैतिक मूल्यों के बदलते स्वरूप को बड़ी गम्भीरता के साथ चित्रित किया है। उन्होंने 'सूखा पत्ता', 'कँटीली राह के फूल', 'काले उजले दिन' आदि उपन्यासों में निम्न–मध्यवर्ग के युवाओं की विभिन्न मानसिक स्थितियों एवं अंतर्द्वन्द्व को प्रस्तुत किया है। डॉ. सुरेश सिन्हा के अनुसार ''प्रतिष्ठित सत्य एवं स्वीकृत नैतिक मानदण्ड झूठे पड़ गए हैं और न केवल समाज के प्रति, वरन् स्वयं अपने प्रति विद्रोह करने के लिए आकुल हैं, प्रयत्नशील है। उसके लिए हर संदर्भ अर्थहीन हो गए हैं और नैतिक मान्यताएँ, बल्कि सारी की सारी आचार संहिताएँ खोखली एवं जर्जर पड़ गयी है। जितना ही वह सार्थक अर्थ प्राप्त करने की चेष्टा करता है, उसमें व्यर्थता का बोधा गहराता जा रहा है और यह असमर्थ होता जा रहा है।''[1] 'ग्रामसेविका' उपन्यास में प्रधानजी दमयन्ती को अपनी बातों से पूरी तरह उलझा लेते हैं और मन–ही–मन इच्छा करते हैं कि दमयन्ती उसकी बातों में आ जाए और उस पर भरोसा करे। वह अपने से आधी उम्र की लड़की को पाना चाहते हैं और दमयन्ती के घर के आस–पास गुंडो को भेजकर उसे डराते हैं।

'ग्रामसेविका' उपन्यास में रधिया मिसिराइन ग्रामसेविका पर शुरू से ही जली हुई थी। जिन अन्धविश्वासों से उनकी जीविका चलती थी और नेतृत्व कायम था, इन्हीं पर दमयन्ती प्रहार करती थी। उस दिन से तो वह और नाराज थी, जब उसकी झाड़–फूँक असफल हुई थी। वस्तुतः उसका दृढ़ विश्वास था कि भूत–प्रेत और जिन्न–चुड़ैल होते हैं। वह भाग्य की मानती थी – यह कैसे हो सकता है कि भाग्य कोई चीज नहीं। भाग्य से ही तो आदमी मरता और जीत है ? भाग्य से कोई धनी होता है और कोई गरीब। अगर भाग्य में नहीं होता तो लाख नाक रगड़ने पर सुख नहीं मिल सकता। जमुना की बच्ची के भाग्य में जीना लिख था इसलिए वह जी गई। उसने तो पहले ही कह दिया था कि वह जी जाएगी। वह दवा न भी खाती तो आज इसी तरह चंगी रहती। यह हरामजादी ग्रामसेविका लोगों की मति मूड़ रही है। उसको कोढ़ पड़े, उस पर लकवा गिरे, उसको काली मैया उठा ले जाए। बड़ी जातियों के मर्दों और स्त्रियों ने स्कूल को छोटी जातियों से संबंधित करके अब तक अपने जातीय अहंकार को संतोष दिया था, परन्तु जमुना के जाने से जहाँ वह क्रूद्ध हुए वहाँ डर भी गए। अब कौन जानता है कि आज जमुना गई है तो कल दूसरे घर की औरत न चली जाए ? फिर तो उनके घरों में भी समस्या बन जाएगी। जमुना की इस तरक्की से दमयन्ती को अपार खुशी हुई। वह स्कूल की अन्य औरतों से आगे बढ़ गई। दमयन्ती ने उसके घर पर पढ़ने के लिए आसान भाषा में लिखी गई कई पुस्तकें दीं। जमुना ने उनको जल्द ही समाप्त कर दिया।[2] 'ग्रामसेविका' उपन्यास का एक और उदाहरण देखिये – रमैनी सहुआइन आसमान से नीचे गिरी।

उसको अपने बेटे से ऐसे व्यवहार की आशा नहीं थी। वह झट इशारा ताड़ गई और साथ ही यह भी समझ गई कि बहू ने उसको वश में कर लिया है। अगर पढ़ना–लिखन अधर्म है तो धर्म की किताबें लिखी ही क्यों गईं ? पुराने जमाने की स्त्रियाँ बहुत विद्वान होती थीं। यह गलत धारणा है कि स्त्रियों को पढ़ाना नहीं चाहिए।[3] गाँव के नेतागिरी भी कोई नेतागिरी है ? जब तक जिला और प्रान्त की नेतागिरी नहीं मिलती तब तक क्या मजा है ? और पैसा ऐसी चीज़ है, जिससे सारे काम

सिद्ध हो सकते हैं। पैसे से दुनिया का सारा सुख खरीदा जा सकता है। सारी प्रतिष्ठा पैसे से मिल सकती है। प्रधानजी का मन पैसे में तैरा करता। परन्तु वह जल्दबाजी नहीं करना चाहते थे। उनको अपनी सफलता पर विश्वास था। प्रधानजी में एक और भी गुण था। वह लगभग पचास वर्ष के थे परन्तु इस उम्र में भी उनकी रसिकता नहीं गई थी। जिस तरह गुड़ की ओर चींटा खिंचता है उसी तरह वह जवान स्त्रियों की ओर आकर्षित होते थे। उन्होंने दमयन्ती को जब से देखा था उनका दिल लोटपोट हो गया था। घोड़े की तरह स्त्री को भी वश में किया जाता है। जिसको घोड़े को वश में करने की कला आती है वह स्त्री को वश में कर सकता है। उसी से स्त्री खुश भी रहती है। प्रधानजी इस कला में माहिर हैं। जिस तरह शक्तिशाली ही जमीन और स्त्री का सुख भोग सकता है, उसी तरह शक्तिशाली ही उन योजनाओं से लाभ उठा सकता है। शक्तिशाली से मतलब उनका उस व्यक्तित्व से था, जो मीठा बोलता हो, जिसके पास पैसा हो, जो बुद्धि का इस्तेमाल करता हो, जो आदमियों को बेवकूफ बना सकता हो, जो अफसरों को खुश रखता हो, जो धूल से पैदा करने की ताकत रखता हो, जो पग–पग पर झूठ बोलता हो।[4]

जहाँ पहले गाँव में स्त्रियों को कभी भी बुरी दृष्टि से नहीं देखा जाता था, स्त्रियों की पूरी इज्जत की जाती थी, उन्हें अपनी माँ–बहन की तरह की समझा जाता था वहीं आज ग्रामीण जीवन के मूल्यों में निरंतर परिवर्तन आ रहा है उसका सफलतम उदाहरण प्रधानजी में देखने को मिलता है जो गाँव की स्त्रियों की ओर कुदृष्टि रखते हैं और साथ ही 'दमयन्ती' जो ग्रामसेविका का कार्य करती है, उस पर भी अपनी बुरी दृष्टि रखते हैं और उसे हथियाना चाहते हैं। डॉ. सुरेश सिन्हा के अनुसार ''प्रतिष्ठित सत्य एवं स्वीकृत नैतिक मानदण्ड झूठे पड़ गए हैं और न केवल समाज के प्रति, वरन् स्वयं अपने प्रति विद्रोह करने के लिए आकुल हैं, प्रयत्नशील है। उसके लिए हर संदर्भ अर्थहीन हो गए हैं। और नैतिक मान्यताएँ, बल्कि सारी की सारी आचार संहिताएँ खोखली एवं जर्जर पड़ गयी है। जितना ही वह सार्थक अर्थ प्राप्त करने की चेष्टा करता है, उसमें व्यर्थता का बोधा गहराता जा रहा है और यह असमर्थ होता जा रहा है।''[5] जैसे–जैसे समय बदल रहा है वैसे–वैसे ग्रामीण लोगों के मूल्यों की नैतिकता का विघटन बहुत तेजी से हो रहा है। आज संबंधों की पवित्रता का भी कोई मूल्य नहीं रह गया है। 'ग्राम सेविका' उपन्यास में विशुनपुर गाँव के ग्राम प्रधान विचित्र नारायण दुबे दमयन्ती को बेटी कहकर सम्बोधित करते हैं। लेकिन गुण्डों की काल्पनिक कहानी सुनाकर उसे अपनी हवस का शिकार बनाना चाहते हैं। उनका मन दमयन्ती को पाने के लिए व्याकुल होता है। प्रधानजी में एक और भी गुण था। वह लगभग पचास वर्ष के थे परन्तु इस उम्र में भी उनकी रसिकता नहीं गई थी। जिस तरह गुड़ की ओर चींटा खींचता है उसी तरह वह जवान स्त्रियों की ओर आकर्षित होते थे। प्रधानजी सोच रहे थे कि दमयन्ती ही ऐसी है, नहीं तो अन्य ग्रामसेविकाएँ तो बहुत जल्दी झुक जाती हैं। अफसर भी तो अजीब–गरीब आ गए हैं। सभी साले कुत्ते हैं ! स्त्री को देखा नहीं कि उनके मुँह में पानी आया। बस दुम हिलाने लगते हैं। उनको मना–फुसलाकर या डरा धमकाकर ऐसी हालत पैदा कर देंगे कि वह बेचारी आ ही जाएगी जाल में। लेकिन दमयन्ती जैसी चिड़िया नहीं मिलेगी।''[6] पासी टोला की सरस्वती पर भी प्रधान जी की नियत खराब होती है।

उसे पाने के लिए उन्होंने उसके पति को बुरी तरह पिटवाया फिर उसके उपचार तथा हर तरह की मदद में आगे रहे। उस प्रधानजी ने बड़ा उपकार किया और बदल में ''एक रोज सरस्वती को अकेले में पकड़ लिया। वह कुछ नहीं बोली और रोती हुई उनकी गोद में आ गिरी थी। उपकार बहुत बड़ी चीज है, संकट में उपकार का अस्त्र अचूक होता है।''[10] इस तरह से बाप–बेटी के संबंध की आड़ तथा उपकार की आड़ में प्रधानजी दमयन्ती को अपना शिकार बनाने की चेष्टा करते हैं। अमरकान्त जी ने प्रधानजी जैसे चरित्रहीन दोगले व्यक्ति के चरित्र को चित्रित किया है जो ऊपर से तो उपकार दया दिखाते हैं किन्तु वे अन्दर से उतने ही गिरे हुए होते हैं। समाज में प्रधानजी जैसे लोगों की कोई कमी नहीं है। 'सुन्नर पाण्डे की पतोह' उपन्यास में सुन्नर पाण्डे की पतोह यानी राजलक्ष्मी अपने ससुराल में ही सुरक्षित नहीं रह पाती है। उसके ननद का पति रामजस उस पर नजर गड़ाये रहता है। वह मौका मिलते ही किसी न किसी बहाने राजलक्ष्मी के पास आ जाता है। वह उसे बुरी तरह से घूरने लगता है। वह बहुत मीठे स्वर में कहता ''अरे दुल्हिन लाओ मैं भर देता हूँ तुम थक जाओगी ! मैं नहीं जानता था कि तुम से इतना काम लिया जाता है....।''[7] नैतिक मानदण्डों का विघटन इस तरह हो रहा है कि सभी परम्पराएँ टूट रही हैं। राजलक्ष्मी की सास अपने पति को प्रेरित करती है कि वह बहू के साथ शारीरिक सुख उठाए वह अपने पति से कहती है ''अरे जाइये ना आप भी बहती गंगा में हाथ धो आइए।''[8] मानवीय संवेदनाओं का पतन ही ऐसी मानसिकता का कारण है।

'लहरें' उपन्यास में नायक श्याम प्रसाद मुहल्ले की स्त्रियों को देखकर अजीब तरह की भाव भंगिमा बनाता है।''ऐसी भंगिमाएं और मुद्राएं बनाता है जैसे सूर्य नमस्कार या कोई योग प्राणायाम कर रहा है और उन्हीं के बीच में भद्दे इशारे भी जैसे ये उन्हीं के अभिन्न अंग हों। वह कभी मुस्कराता दोनो हाथ माथे पर जोड़ देता है और दोनों हाथों के अंगूठों को क्रमशः दोनों कानों के बीच टिकाकर उंगलियों का संचालन इस ढंग से करता है मानो बुला रहा हो। प्यार भरी तिरछी धारदार दृष्टि से और कभी अत्यन्त कारूणिक मुद्रा बनाकर देखता जैसे याचना कर रहा हो और कभी–कभी लोलुप तन्मय मुस्कराहट के साथ पलकों को कोमल संकेतों से झपकाता।''[9] श्यामाप्रसाद अपनी छवि आधुनिक मनचले युवक के रूप में बनाना चाहता है। उसकी पत्नी अनपढ़ गंवार है। लेकिन बच्ची देवी जब पढ़ना लिखना सीखती है अच्छी तरह से रहना चाहती है तो वह उस पर शंका करता है उसे मारता–पीटता है। इस तरह की सोच और दृष्टि व्यक्ति के निहित कुण्ठाओं, चरित्रहीनता, नैतिक पतन का प्रतीक है।'सूखा पत्ता' उपन्यास में मनमोहन का कृष्ण के साथ समलैंगिक प्यार उसके मानसिक विकृति और कुण्ठा को व्यक्त करता है। मनमोहन कृष्ण को एक प्रेम–पत्र लिखता है

कृष्ण, तुम्हारे कारण मेरा जीवन कितना मधुर हो उठा है, यह मैं कैसे बताऊँ। तुम्हारी छोटी–से–छोटी बात से मैं पागल हो उठता हूँ। तुम कितने अच्छे हो ! तुम मेरे जीवन पर छा गए हो। तुमसे अलग होकर मैं अपनी जिन्दगी की कल्पना नहीं कर सकता।

यह तो चीज तुम्हारी ही है,
ठुकरा दो या प्यार करो।
दुनिया का सबसे अभागा किन्तु
सदा तुम्हारा
– मनमोहन[10]

आज नैतिकता के संदर्भ में बहुत परिवर्तन नजर आ रहे हैं। बदलते हुए रूपों में नैतिकता कम और अनैतिकता ही अधिक देखने को मिलती है। 'बीच की दीवार' उपन्यास में मनफूल ऐसा व्यक्ति है जो दीप्ति के पीछे सिर्फ अपनी शारीरिक स्वार्थपूर्ति के लिए पड़ता है। ''अब वह अधिक प्रतीक्षा नहीं कर सकता, विलम्ब करने से हो सकता है, सारा काम बिगड़ जाए। हर बात का एक अवसर होता है। अब अवसर आ गया है कि वह साहस का परिचय दे और जबरदस्ती सुख को अपने अधीन कर ले।''[11]

निष्कर्ष :

अमरकान्त जी ने अपने उपन्यासों के माध्यम से समाज में व्याप्त कुण्ठा, पतन, आदर्श और ईमानदारी का स्वांग, कायरता, लालच, वासनाग्रस्त मानसिकता के साथ–साथ आदर्शवादी चरित्रों को भी चित्रित किया है। उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि शहर हो या गाँव, शिक्षित हो या अशिक्षित सभी के जीवन में नैतिक मूल्यों का स्वरूप बदलता रहता है। नैतिकता अनैतिकता में बदल रही है। अर्थ केन्द्रित समाज में जीवन में नैतिकता का पतन होता जा रहा है। व्यक्ति के लिए भौतिक सुखों को भोगना उसका लक्ष्य बनता जा रहा है। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए वह नैतिकता का हनन कर रहा है। व्यक्ति के अंदर का खोखलापन, उसका दोहरा चरित्र, विकृत मानसिकता, हीनभावना, कुण्ठा, संवेदनहीनता व भौतिकता की अंधी दौड़ में नैतिकता के मूल्यों का विघटन समाज के लिए सबसे बड़ी विडम्बना है। अमरकान्त जी ने अपने उपन्यासों के माध्यम से यथार्थ का तटस्थता से नैतिक मूल्यों के बदलते स्वरूप को चित्रित किया है। उन्होंने समाजिक जीवन में हो रहे नैतिक पतन संबंधों के बदले अर्थ, आधुनिक जीवन की निराशा और कुण्ठाओं को बखूबी चित्रित किया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1 डॉ. सुरेश सिन्हा, (1972) हिन्दी उपन्यास, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम पृ.सं. 135
[2] अमरकान्त, (2008) ग्राम सेविका, राजकमल प्रकाशन – नई दिल्ली, पहला संस्करण, पृ.सं. 49–52
3 अमरकान्त, (2008) ग्राम सेविका, राजकमल प्रकाशन – नई दिल्ली, पहला संस्करण, पृ.सं. 59–62
4 अमरकान्त, (2008) ग्राम सेविका, राजकमल प्रकाशन – नई दिल्ली, पहला संस्करण, पृ.सं. 67
5 अमरकान्त, (2008) ग्राम सेविका, राजकमल प्रकाशन – नई दिल्ली, पहला संस्करण, पृ.सं. 79
6 अमरकान्त, (2008) ग्राम सेविका, राजकमल प्रकाशन – नई दिल्ली, पहला संस्करण, पृ.सं. 77
7 अमरकान्त, (2005) सुन्नार पाण्डे की पतोह, राजकमल प्रकाशन – नई दिल्ली, पृ.सं. 49
8 अमरकान्त, (2008) लहरें, अमर कृतित्व प्रकाशन –इलाहाबाद, पृ.सं. 18
9 अमरकान्त, (2015) सूखा पत्ता, राजकमल प्रकाशन – नई दिल्ली, पृ.सं. 32–33
10 अमरकान्त, (2008) बीच की दीवार, राजकमल प्रकाशन – नई दिल्ली, पृ.सं. 60
11 अमरकान्त, (2008) इन्हीं हथियारों से, राजकमल प्रकाशन – नई दिल्ली, पृ.सं. 129